संस्कृति और समाज को जोड़ती बराली एक्सप्रेस

– जगमोहन चोपता

चमोली जनपद में पिण्डर नदी की सहायक नदी है चोपता गदेरा (छोटी नदी)। इस छोटी किंतु सदानीरा नदी के आसपास के भूगोल, समाज और प्रक्रियाओं की पड़ताल है बराली एक्सप्रेस। जिसमें तेजी से बदल रहे समाज, संस्कृति, खेती और बचपन की पड़ताल है। आज से तीन दशक पहले के समय को जानने समझने की कोशिश है बराली एक्सप्रेस की यह श्रृंखला।

जल, जंगल और जमीन का वहां के रहवासियों के दिलों के साथ गहरा संबंध रहता है। इन सबंधों की डोर ही तमाम संघर्षों के बावजूद इस समाज को जीवट और साहित्य–संस्कृति से सराबोर रखती। खेती इस समाज का केन्द्रीय बिंदु होने के चलते जीवनचर्खा की डोरी भी उसी उमंग–तरंग और लय के साथ–साथ बंटती और सधती चली जाती। इस पूरी प्रक्रिया में समाज अपने लिये सीखने के तमाम संस्थान भी तैयार करता है। जो बड़ी–बड़ी अट्टालिकाओं की मोहताज नहीं होती। ये संस्थान खुली हवा में अपने तरानों से पूरे समाज की धड़कनों को उन्मुक्त करते रहते हैं। जिसमें खेतिहर समाज के हर सदस्य पीढ़ी–दर–पीढ़ी दीक्षित होते रहते हैं। ऐसा ही संस्थान है पयूण्या (औजार को धार लगाने वाला पत्थर)! पयूण्या पहाड़ की सर्पीली पगडंडियों में वह स्थान होता है जहां खेतिहर समाज अपने कामकाज के औजारों को धार देते हैं। पहाड़ की पीठ पर जहां–तहां ऐसे बहुतेरे पत्थर मिल जायेंगे जहां पहाड़ के रहवासी अपने हथियारों को पयाते (धार लगाना) हैं। इसको घास–लकड़ी काटने से पहले की तैयारियों का मैदान भी कहा जा सकता है। जहां पहाड़ के रहवासी अपने दाथुला, थम्याली और कुल्हाड़ी को पयाते हैं। ये पयूण्या डांग पहाड़ के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं। इन पयूण्या डांगों ने न जाने कितनी पीढ़ियों को उनके हथियारों को पयाने में अपना योगदान दिया होगा।

दाथुली पयाने की घुस–घुस की आवाज से उत्पन्न सुन्दर संगीत में चूड़ियों की खनक एक अलग ही रवानगी पैदा करती है। इन आवाजों को सुनते ही आप ठिठके बिना नहीं रह सकते। दाथुली पयाने के साथ–साथ उत्साह, उम्मीद, मायके या अपने पिता–भाई–प्रेमी–पति की खुद और घोर निराशाओं को बयां करते गीतों के बोल पहाड़ में सुनाई देते हैं। इन गीतों से लगता है कि पहाड़ के लोगों का जीवन इतने युगों के बाद भी नहीं बदला हो।

ये पयूण्डया डांग के इर्द–गिर्द बैठकर नयी ब्वारियां (बहु) अपने मायके–ससुराल की खूब सारी बातें करती हैं। कभी खुद लगने पर रोती तो ननद–जिठानी के छेड़ने पर ठहाकों में बदल जाती। एक तरफ दाथुला पयाने की घुस–घुस की आवाज आती तो दूसरी तरफ धोती के पल्लु से आंसू पोछती नयी नवेली ब्वारी की सुबक–सुबक। मानों वे अपने दुख–विपदाओं के साथ लय बना रही हों।

गाय चराने के लिये आते–जाते छोटू और उनके दगड़िये (दोस्त) जब–तब इस तरह के वाक्ये देखते और सुनते थे। ऐसे क्षणों में वे अपनी चलने की रफ्तार थोड़ा और बढ़ा देते। बहुत बार ब्वारियों द्वारा अपने मायके से ला रखी मिठै–कल्यों को अपने दगड़यों में बांटने के लिये लाया जाता। ये कल्यो मायके से ही अपनी बेटियों के लिये उनके मां–बाप अलग से रखते। जिसे सास–ससुर से छुपते–छुपाते इन पयुण्या डांगों तक लाया जाता। उसको बांटने और मिलकर खाने का इससे बेहतर अड्डा कहां हो सकता था। मिठाई बांटने के साथ ही उसको किसने बनाया? कौन लाया? आदि पर खूब बातचीत होती।

दूसरी तरफ छोटू स्कूल में राजा–महाराजाओं के इतिहास, उनकी लड़ाई और महलों के बारे में पढ़ते हुये कई बार सोचता कि क्या कहीं इन पयूण्डा डांग का भी कोई इतिहास लिखा होगा? जहां पहाड़ के दुख–दर्द, हर्ष–उल्लास, खुद–रैबार और खुदेड़ गीतों की समृद्ध परम्परायें दर्ज की गई हों। लेकिन स्कूल की चारदीवारी में ऐसी किताबों या किस्सों का कहीं कोई नामोनिशान नहीं मिलता। छोटू मन ही मन सोचता कि काश कोई ऐसी किताब लिखता जिसमें पहाड़ के ये अथाह गौरव किन्तु पहाड़ की बेटी–ब्वारियों के नितांत निजी पलों को भी उकेर पाता।

(लेखक अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, चमोली से जुड़े हैं)